Aayushi International Interdisciplinary Research Journal (AIIRJ)
UGC Approved Sr.No.64259
Vol - V Issue-III MARCH 2018 ISSN 2349-638x Impact Factor 4.574

संत कवियों की लोकधर्मिता

डॉ. संदीप रणभिरकर
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
बान्दरसिंदरी, किशनगढ – 305801
जिला–अजमेर (राजस्थान)

संत–काव्य परंपरागत साहित्यिक मानदण्डों को तिलांजलि देते हुए नए मानदण्डों की प्रतिष्ठापना करता है।संत–काव्य भले ही धार्मिक आवरण में लिप्त हो किन्तु वह है तो मानवीय ही। यह काव्य हमारी संवेदनाओं को मानवीयता से जोड़ता है, मनुष्यता की नयी परिभाषा करता है तथा नया धर्म रचता है। यह नया धर्म ही 'लोकधर्म' है और इसी लोकधर्म के प्रति समूचा संत–काव्य समर्पित है। यह दुरुहता तथा जटिलता का काव्य न होकर मनुष्य की सहजता तथा स्वाभाविक मनस्थितियों का काव्य है। इसमें जन–सामान्य की आशा–आकांक्षा, सुख–दुःख सन्निहित है। जन–जागरण की प्रेरणा लेकर स्फुरित हुआ यह काव्य आशावादी मूल्यों की स्थापना करता है।

हम कह सकते हैं कि जब–जब मानवीय मूल्यों का, जीवन के आदर्शों का पतन होने लगता है उस समय अंधकार से प्रकाश की ओर, असत्य से सत्य की ओर, अधर्म से धर्म की ओर, दानवता से मानवता की ओर, विनाश से सृजन की ओर, और अंत में असीम से ससीम की ओर ले जाने का श्रेय यदि किसी को दिया जा सकता है तो हिंदी साहित्य में उन संत कवियों को जिन्होंने एक विश्वास और निष्ठा के साथ अपनी वाणी से, अपने तप और साधना से संसाररूपी भवसागर के बंधनों से मुक्त होने की प्रेरणा दी और सुख शांति से जीवनयापन का मार्ग बताते हुए सदमार्ग की अनुभूति करायी तथा मानवीय कर्तव्यों का ज्ञान करवाया।

संत–काव्य की बुनियाद ही 'जनता' है। भाषा भी जनता की भाव निर्झर भी जनता के लिए। जैसे क्रौंच मिथुन का कारुणिक चीत्कार वाल्मीकि की प्रतिभा के द्वार को उन्मुक्त कर 'रामायण' का निमित्त बना, ठीक वाई वैसे ही युग–समाज की व्यापक व्यथा–पीड़ा से विव्हल संत–कवियों के हृदय से मानव कल्याण की भागीरथी फूट चली। डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं –"संत–साहित्य भारतीय जनता के प्रेम, घृणा, आशाओं और वेदना का दर्पण है। वह उसके हृदय की सबसे कोमल, सबसे सबल भावनाओं का प्रतिबिम्ब है। उसकी मानवीय सहजता लौकिक जीवन में आस्था और उज्ज्वल भविष्य की कामना का प्रतिक है।"[1]स्पष्ट है कि संत–काव्य मानवीय जीवन में निरंतर प्रवाहमान वह अमृतमय पयस्विनी है जिसकी महत्ता अक्षुण्ण है।

'महाभारत' में धर्म को परिभाषित करते हुए कहा गया है – "धर्मो धारयति प्रजाः।" अर्थात जो समाज को धारण करे वह धर्म है, समाज की गतिविधियों से जुडा धर्म । किन्तु अब तक धर्म आचार्यों, दार्शनिकों के खाते में था, वे ही धर्म पर विचार करते थे। संतों के सद्प्रयासों के चलते यह पहली बार हुआ कि समाज के साधारण तबके के लोग धर्म की चिंता करने लगे। जो निर्गुण ब्रह्म सूक्ष्म रूप में था वह इन कवियों के हाथ में पड़कर ठोस रूप धारण करने लगा और जनसाधारण अपनी आध्यात्मिक तृषा बुझाने लगे। संत कवियों ने धर्म के दायरे में हस्तक्षेप किया और व्यापक प्रभाव डाला। इन्होने धर्म के अंतर्गत सन्यासरूपी पलायन को व्यर्थ सिद्ध किया और धर्म को पारिवारिक आचरण में उतारने की बात की। धार्मिक पाखंडों का विरोध कर जीवन के सार–ग्रहण की प्रवृत्ति पर ये कवि बल देते हैं –

"साधू ऐसा चाहिए जैसे सूप सुभाय।
सार–सार को गहि रहे थोथा देई उडाय।"

मध्यकाल में आकर धर्म केवल मीमांसा का विषय नहीं रह गया, वह तो घरेलु जीवन का विषय बन गया। धर्म के क्षेत्र में पहली बार संतों की पहल के कारण समाज के सामान्य लोगों का हस्तक्षेप हुआ। इस तरह लोक से जब धर्म जुडा तो जाहिर है वह लोक की सुन्दरता, लोक के क्रिया–कलाप से प्रभावित हुआ। एक दार्शनिक धर्म से वह लोकधर्म में परिणत हुआ। संत कवियों ने मूलतः धर्म को उत्तुंग शिखर से उतारकर ठोस जमीन पर प्रतिष्ठित किया और इस प्रकार लोकधर्म की स्थापना की। इन कवियों ने धर्म को लोगों के सुख–दुःख से जोड़ा। धर्म में जब बौद्धिकता आती है तो वह जन–जीवन से दूर होता है। रवींद्रनाथ कहते हैं – "जब धर्म ऊंचाई पर पहुँच जाता है तो वह जन–जीवन से दूर हो जाता है।" संत कवियों ने धर्म को ऊँचाई से उतारकर जमीन से जोड़ा। यही कारण है कि शताब्दियों से संत–काव्य भटकते हुए मानव समाज को प्रकाश दे रहा है। डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं – "संत–काव्य साधना में तत्पर एवं सर्वजन की मंगल कामना करनेवाले भक्तों के सरल हृदयों की सहज अनुभूति का चित्रण मात्र है। यह वह प्रकाशस्तंभ है जो निराशा. वासना, प्रतिशोध और प्रतिहिंसा के अन्धकार में भटकते हुए मानव समाज को शताब्दियों से प्रकाश दे रहा है और भविष्य में भी मार्ग प्रदर्शित करता रहेगा।"[2]

संत कवियों ने जिस नुतन धर्म की प्रतिष्ठा की वह लोकधर्म ही नही अपितु विश्वधर्म में परिणत हो गया और जन–सामान्य का पथ प्रदर्शित करने लगा। डॉ.शिवकुमार शर्मा के शब्दों में – "जिस युग में इस काव्य की सृष्टि हुई वह अज्ञान, अशिक्षा और अनैतिकता का युग था। संतों की पीयूषवर्षिणी उपदेशमयी वाणी ने उसमे एक दृढ़ नैतिकता की प्रतिष्ठा की। संत संप्रदाय ने धर्म का ऐसा स्वाभाविक, निश्छल, व्यावहारिक तथा विश्वासमय रूप जन–भाषा में उपस्थित किया जो कि विश्वधर्म बन गया और अब भी जन–जीवन में पुनःजागरण का पावन सन्देश दे रहा है। संत साहित्य ने जन–जीवन को धर्म–प्रवण एवं आशामय बनाया। इस दृष्टि से संत साहित्य का सांस्कृतिक मूल्य भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।"[3]

मानव–मानव के मध्य जब मानवता का अतीव लोप हो चला था, मानवीय सद्वृत्तियाँ – प्रेम, क्षमा, करुणा, शील, सेवा, त्याग एवं अहिंसात्मक चिरंतन मूल्य जब लुप्त प्राय होते प्रतीत हुए, ऐसे संक्रान्ति काल में मध्यकालीन संतों ने भक्ति की जो भागीरथी प्रवाहित की उसने मानव में मानवता का संचार किया। जो मानव–धर्म जाति, वर्ग, संप्रदाय आदि के प्रखंडों में विभक्त हो चला था उसमे भावनात्मक एकत्व का मृदु संचार किया।निराकार प्रतीक के रूप में धर्म, नीति, मानवता, मर्यादा, सत्य, शील, सदाचार एवं लोककल्याणपरक दिव्य मानवीय सद्गुणों का समारोहपूर्ण समावेश करके भारतीय जनमानस में अपूर्व शक्ति, शील एवं सौन्दर्यपरक आदर्श की प्रतिष्ठा की।

संत कवियों का मूल्य–बोध सामजिक यथार्थ से उपजा है। धर्म तथा भक्ति का स्वर प्रधान होने के साथ ही मनुष्य के भौतिक तथा लौकिक जीवन को स्वीकृति प्रदान करने के कारण संत–काव्य मनुष्य जीवन का काव्य हो गया है। मानवीय जीवन अनमोल है किन्तु अज्ञान के कारण मनुष्य उसे व्यर्थ बनाता है, अतः मनुष्य को अपने जीवन एवं जन्म को सार्थकता प्रदान करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में नानक लिखते हैं –

"रैन गंवाइ सोई कै दिवस गंवाया खाय ।
हीरे जैसा जनमु है कौड़ी बदले जाय ।।"

संत–काव्य में जीवन की गतिविधियाँ, सामंती उत्पीडन तथा मानवीय स्वर सुनाई पड़ता है। इन कवियों ने जनता के सुख–दुःख को अपने निजी जीवन का सुख–दुःख मानकर उस पीड़ा से मुक्ति का प्रयास किया है। इन कवियों ने भारतीय जनता के सुख–दुःख से द्रवित होकर साहित्य रचा और निरंतर उनके साहित्य–दर्पण में हम भारतीय जीवन की पीड़ा का प्रतिबिम्ब देखते हैं। जीवन की व्यथा से आकुल होकर संत कवियों ने व्यक्तिगत सुख–दुःख की भावना तज दी थी किन्तु उनका साहित्य सामाजिक जीवन से वैराग्य न ले सका –

"सुखिया सब संसार है खावे और सोये।
दुखिया दास कबीर है जागे और रोये।।"

संत–काव्य ने राजदरबार–मंदिर–मस्जिद के इजारे को तोड़कर जो लोकधारा प्रवाहित की वह अप्रतिम कही जायेगी, क्योंकि इस धारा का मूल स्त्रोत यहाँ का विशाल जन–समुदाय है। वस्तुतः यह जागरण का साहित्य है क्योंकि इसने शोषित–पीड़ित तथा वंचित जन–समुदाय को आत्म–सम्मान तथा आत्मविश्वास के लिए जागृत किया, चाहे वे अछूत हों या सामजिक–आर्थिक हैसियत से कमजोर वर्ग के। मानवता की प्रतिष्ठा के बगैर समाज में किसी भी प्रकार के सुधार की बात करना छलावा मात्र है। संत कवियों के अनुसार यह समुचा संसार एक ही तत्व से उत्पन्न है। इसलिए सभी प्रकार की भेद दृष्टि मिथ्या है। मानव–मानव में भेद परम अज्ञान का द्योतक है। इसी तत्व दृष्टि से प्रेरित संत कवियों ने जाति–पांति, छुआ–छूत, ऊँच–नीच के भेद का विरोध किया। संत कवि सार्वभौम मानव धर्म के प्रतिष्ठापक थे। रैदास का मानना था कि जब तक समाज में जाति–भेद रहेगा तब तक मानवता की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती –

"जात–पात के फेर महि, उरझि रहुइ सब लोग।
मानुषता को खात है, 'रैदास' जात का रोग।।"

संत–काव्य दुरुहता तथा जटिलता का काव्य नहीं है, वरन वह मनुष्य की सहजता तथा स्वाभाविक मनस्थितियों का काव्य है। अतः संत कवि समाज में व्याप्त बाह्याडम्बर, पाखण्ड, कर्मकांड आदि का पूर्णतः विरोध करते हैं। वे समाजसुधारक एवं धर्मसुधारक की भूमिका साथ–साथ निभाते हैं। वे लोकधर्म की स्थापना करते हैं और जन–सामान्य को रूढ़ तथा जर्जर अंधविश्वासों से अलग कर मानवीयता के नये सूत्र में आबद्ध करते हैं। उनका एकमात्र उद्देश्य था जनता को जागरूक कर उनका पथ प्रदर्शन करना। "कबीर निर्गुण–निराकार की भक्ति का प्रतिपादन सोद्देश्य करते हैं, जिसके मूल में सामजिक–सांस्कृतिक कारक हैं और कर्मकांड, तीर्थाटन आदि का विरोध भी इसी आशय से है।"[4] कबीर बाहरी दिखावे की जगह आतंरिक चेतना को महत्व प्रदान करते हैं। इसीलिए माला फेरने की जगह मन के मनके को फेरने की बात करते हैं –

"माला फेरत जुग गया गया न मन का फेर।
कर का मनका डारि कै मन का मनका फेर।।"

संत–काव्य लोकहितवादी विचारधारा को लेकर चलता है। समष्टि हित को ध्यान में रखते हुए इन कवियों ने वर्गीय समाज की व्यक्तिवादिता का लगातार विरोध किया। लोकहित के विचारों को अपने काव्य में प्राथमिकता प्रदान करते हुए संत कवि व्यक्तिवादी हितों की आलोचना करते हैं। सम्प्रदायवाद के विरोध के माध्यम से उन्होंने मानवीय एकता का मार्ग खोज निकाला। वे मनुष्य की चेतना का सकुंचन नहीं वरन विस्तार चाहते हैं। यही संत–काव्य की प्रगतिशीलता है। इसके लिए वे नैतिक आदर्शों का भी प्रतिपादन करते हैं। इन्होने जहाँ काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार आदि की निंदा की है, वहाँ सत्य, दया, प्रेम, परोपकार आदि का महत्व भी बतलाया है। परोपकार को वे संत का पहला लक्षण मानते हैं –

"कबीरा सोई पीर है, जो जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफिर बेपीर।।"

साथ ही इन कवियों ने देवत्व का मानवीकरण किया। इनके अनुसार ईश्वर का निवास मनुष्य के भीतर ही है, उसे बाहर खोजना व्यर्थ है। अपने शरीर के अन्दर ही मंदिर–मस्जिद को खोजने का यह अनूठा तरीका है। संत कवि आत्मज्ञान पर बल देते हैं। अतः ईश्वर को अन्यत्र खोजने की आवश्यकता नहीं है –

"देवल मांहै देहुरी, तिल जेहैं विस्तार।
मांहै पाती मांहि जल, मांहै पूजनहार ।।
मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जांणि।
दसवां द्वारा देहुरा, तामै जोति पिछांणि।।"

अनुभव ज्ञान की उपज कबीर की ये पंक्तियाँ सीधे जन–मानस में प्रवेश कर जाति हैं और "मसि कागज छुयो नहीं, कलम गह्यो नहीं हाथ" को चरितार्थ करती हैं। डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल लिखते हैं – "जन्मजात सामाजिक पहचान के स्थान पर कबीर समाज संवेदना और मूल्य–बोध पर आधारित पहचान की खोज करते हैं .

.. इस सामाजिक खोज में लगे होने के कारण 'आध्यात्मिक' खोज उन्हें बेमानी नहीं लगती। उनके लिए ये खोजें परस्पर विरोधी नहीं परस्पर निर्भर हैं। कबीर सामाजिक व्यवस्था, परंपरा और मान्यताओं के रूपांतरण का प्रस्ताव करते हुए अपनी वैयक्तिक सत्ता को लगातार रेखांकित करते हैं – इसलिए वे 'आधुनिक मनुष्य' को अपने चित्त के अधिक निकट लगते हैं।"[5]

कला की दृष्टि से भी संत–काव्य 'लोक' से सम्बद्ध है। संत कवियों ने 'कला कला के लिए' जैसे सिद्धान्तों का समर्थन नहीं किया उनके वर्ग को देखते हुए भी यह सम्भव नहीं था। उनकी कला 'लोक' के लिए थी। उनकी कला–रचना का केंद्र मनुष्य का जीवन है। जिसके सामाजिक, आर्थिक द्वंद्वों के परिणामस्वरूप उन्होंने काव्य–रचना की तथा इसे समाज के लिए प्रेरणा तथा जीवनदायक रूप प्रदान किया। लोकभाषा में श्रेष्ठ साहित्य लिखा जा सकता है यह उन्होंने प्रमाणित किया है। उन्होंने यह सिद्ध किया है कि रचनाशीलता का विस्फोट अपनी भाषा में ही हो सकता है। संत–काव्य मातृभाषा से प्रेम करना सिखाता है। साहित्य को जन–सामान्य तक पहुँचाने के लिए संत कवियों ने लोकभाषा का प्रयोग किया है।

समग्रतः संत कवियों ने जन–जीवन का सीधा साक्षात्कर लिखा। इन कवियों ने अपनी आत्मा की वाणी को मुखरित किया। अपने विचारों में निहित सत्य को शाश्वत एवं विश्व–जनीन मानते हुए, उन्हें दूसरों के हितार्थ प्रकट करना चाहा।[6] यह भारतीय एकता का काव्य है। इन कवियों ने धर्म को मनुष्यता से जोड़कर उच्चतर धरातल पर प्रतिष्ठित किया। इनका मूल्य बोध सामाजिक यथार्थ से उपजा है। धर्म तथा भक्ति का स्वर प्रधान होने के साथ ही मनुष्य के भौतिक तथा लौकिक जीवन को स्वीकृति प्रदान करने के कारण संत–काव्य लोक–जीवन का काव्य हो गया है।

सन्दर्भ सूची –

1. डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ – 140
2. वही, पृ – 141
3. डॉ. शिवकुमार शर्मा, हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियां, पृ – 139
4- डॉ. प्रेमशंकर भक्तिकाव्य का समाज दर्शन, पृ –94
5- डॉ. पुरुषोत्तम अग्रवाल, अकथ कहानी प्रेम की, पृ –20
6. परशुराम चतुर्वेदी, संत साहित्य की भूमिका, पृ – 9